

## सब उसी के बंदे हैं विशिष्टता का अहंकार छोड़ो

एक बहुत रोचक सूफी कहानी है। एक सूफी फकीर के पास एक युवक आया, उसने कहा कि मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ। फकीर ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा, उसकी आंखों में झांका और लगा कि यह युवक बस यूँ ही आ गया है, उसकी ध्यान या प्रार्थना में कोई रुचि और जिज्ञासा नहीं दिखती।

फकीर ने उत्तर दिया, तुझे पता है शिष्य होने का क्या अर्थ है? यह बड़ी कठिन बात है। खूब साधना करनी होगी, सुबह से सांझ तक कार्य करने पड़ेंगे। अपने को निखारना-संवारना होगा। क्या तुम इतनी तैयारी से आए हो? उस युवक ने कहा, मुझे एक अवसर दें अपने को सिद्ध करने का। जो भी आज्ञा होगी, मैं करूँगा। मैं ईमानदार हूँ, अपने कर्तव्य का पालन करूँगा।

फकीर ने कहा, देखो वर्षा के दिन आ रहे हैं। जंगल जाकर लकड़ियों काट कर लानी होंगी, उन्हें सम्हाल कर सुरक्षित स्थान पर रखना होगा। आश्रम की छत खराब हो गयी है, उसकी मरम्मत करनी होगी। कुछ खेती और बागबानी का काम होगा और फिर सुबह शाम रसोई में भोजन बनाना होगा, बर्तन मांजने होंगे। आश्रम में मुख्यतः यही काम होंगे, जो तुम्हें करने होंगे। बोलो, तुम तैयार हो?

युवक ने कहा, गुरुजी, ये तो आपने शिष्य के कार्य बताए। अब कृपा करके गुरु के कार्य भी बता दें।

फकीर ने कहा, गुरु का कोई कार्य नहीं है। गुरु बैठा रहता है, वह तो आदेश देता है, उपदेश देता है; कार्य तो शिष्य को करना होता है।

युवक ने ललचाई नज़रों से फकीर को देखा और बोला, फिर गुरुजी, आप मुझ पर कृपा करें, मुझे ऐसी शिक्षा दें कि मैं जल्दी से जल्दी गुरु बन जाऊँ। मैं शिष्य के रूप में अपना जीवन नहीं गंवाना चाहता हूँ। मैं आपकी शरण में आया हूँ, कृपया मुझे गुरु बना दें।

इस बोधकथा को समझाते हुए ओशो कहते हैं : 'बहुत से शिष्य, शिष्य अपने को मानते हैं, लेकिन गहरे में गुरु होने की आकांक्षा है। तो चूक जाएंगे। शिष्य भी बने होंगे वे तो इसी आशा में बने हैं कि आज नहीं कल गुरु हो जाना है। थोड़े दिन की मुसीबत है, झेल लेंगे। सीखने का समय है, जल्दी बीत ही जाएगा। कोई दुख सदा तो रहता नहीं। दुख भी बीत जाता है। ये दिन भी बीत जाएंगे, फिर गुरु हो जाएंगे।'

यह बोधकथा तो पुराने दिनों की है जब शिष्यों को जंगल में लकड़ी काटने जाना पड़ता था, आश्रम की गऊएँ चराने ले जाना होता था, कुएं से पानी भर के लाना होता था, आज तो दुनिया विकसित हो गयी है, शिष्यों को यह सब नहीं करना पड़ता। दुनिया विकसित हुई है तो मन की चालाकियां भी विकसित हुई हैं। इस पुरानी कहानी में शिष्य बनने आया युवक एक अर्थ में ईमानदार है और अपने मन की बात, गुरु बनने की आकांक्षा को पहली ही भेंट में कह देता है। आज के शिष्य ऐसा कहने की हिम्मत नहीं करते।

अमेरिका में रजनीशपुरम् कम्प्यून् बना था। जब ओशो वहां से भारत लौट आए तो कुछ पाश्चात्य शिष्य ऐसे भी थे, जो पश्चिमी देशों में जाकर अपने को जल्दी ही गुरु के रूप में स्थापित करने में लग गए और उन्होंने अपने परिचय के साथ कहीं भी ओशो का नाम नहीं जोड़ा।

कुछ शिष्य और अलग तरह के गुरु बन गए हैं, अथवा गुरु बनने के लिए प्रयासरत हैं। कभी-कभी नए-नए व्यक्ति आते हैं, जिन्हें हम मध्य प्रदेश की भाषा में 'दूध की दुहनिया कहें', दो-चार ध्यान-शिविर कर लेते हैं, कुछ ध्यान-विधियां सीख लेते हैं और कारपोरेट गुरु बनने निकल पड़ते हैं। कहते हैं कि कारपोरेट जगत में बहुत तनाव है और उनके पास बहुत धन भी है, चलो उन्हें तनाव-मुक्त करें और पैसा कमाएं।

कुछ और शिष्य हैं जो गुरु बन गए हैं, वे लार्ज स्केल पर आगे अपने शिष्य बनाने में लग गए हैं। भले ही वे सब कुछ अपने गुरु के नाम पर करते हैं, लेकिन वे उन्हें अपने गुरु से नहीं, अपने से जोड़ते हैं, उन्हें अपना शिष्य समझते हैं। वे दावा करने लगे हैं कि हमने इतने हज़ार शिष्य बना डाले। कुछ और शिष्य हैं जो गुरु बने हुए हैं लेकिन उनके पास कुछ गिने-चुने लोग ही आते हैं। वे घोषणा करते हैं कि हमारा कार्य तो बहुत क्वालिटी वाला है, हम रिफ-रैफ इकट्ठा नहीं करते, केवल गहरे साधकों पर कार्य करते हैं। ये शिष्य तो परोक्ष रूप से अपने गुरु से भी आगे निकल जाने की घोषणा कर रहे हैं। सद्गुरु कहां यह भेद करता है कि कौन सामान्य साधक है, कौन विशिष्ट। वह तो सभी को स्वीकार करता है, अन्यथा वह उन्हें भी कैसे स्वीकार करता—ऐसे विशिष्ट तथा अहंकारियों को!

ओशो ने तो कहा है कि जब परमात्मा भेद नहीं करता, सभी को पैदा किये चले जाता है तो मैं क्यों किसी को अस्वीकार करूँ। ओशो ने सभी को स्वीकार किया, बेशर्त अपना प्रेम दिया। कोई सामान्य हो कि गहरा साधक, अतंतः सभी के भीतर स्वयं परमात्मा विराजमान है; सभी बीज फूल बनने की संभावना लिए हुए हैं। यह तो अजीब है कि 'च्चायसलेस अवेयरनेस' चुनाव-रहित चैतन्य के साधक या सिद्ध भी चुनने बैठ जाते हैं कि कौन उनके पास आये, कौन नहीं। ऐसे चुनने वाले स्वयं ठीक से शिष्य ही नहीं बने, गुरु अथवा सद्गुरु होना तो बहुत दूर की बात है। कबीर, नानक, दादू, पलदू, बुल्लेशाह आदि संत भी तो सामान्य जन ही थे। सूफी फकीर भी ऐसे सामान्य जन होते हैं कि कोई आंख वाला, हृदयवाला, संवेदनशील व्यक्ति ही उन्हें पहचान पाता है। सूफी संत जूते पालिश करते रहे हैं, गलीचे बनाते रहे हैं, जैसे कबीर कपड़ा बुनते रहे हैं। झेन फकीर भी बागबानी, लकड़ी काटना, कुएं से पानी भर लाना, ऐसे सामान्य दिखने वाले कार्य करते रहे हैं। लोग सामान्य दिखते हैं लेकिन वास्तव में यहां कोई भी सामान्य नहीं है। सब उसी के बंदे हैं।

—स्वामी चैतन्य कीर्ति